भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का पुनर्मूल्यांकन

डॉ. ओम प्रकाश त्रिपाठी
प्रा. लता शिरोडकर

श्रीमती पार्वती बाई चौगुले महाविद्यालय, मडगाँव, गोवा

विद्या प्रकाशन
सी, 449, गुजैनी, कानपुर – 22

ISBN : 81-88554-00-6

मूल्य : तीन सौ रुपये मात्र

पुस्तक	:	भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का पुनर्मूल्यांकन
लेखक	:	डॉ. ओम प्रकाश त्रिपाठी एवं प्रा. लता शिरोडकर
प्रकाशक	:	विद्या प्रकाशन सी-449, गुजैनी, कानपुर – 22 दूरभाष : (0512) 2285003
संस्करण	:	प्रथम, 2004 ई.
मूल्य	:	300.00
शब्द सज्जा	:	आशीष ग्राफिक्स, पी. रोड. कानपुर
मुद्रक	:	अजित आफसेट, रामबाग, कानपुर

Bhaktikal Ke Pramukh Kaviyon Ka Punrmulyankan

By : *Dr. Om Prakash Tripathi & Prof. Lata Shirodekar*

Price : Rs. Three Hundred only

जायसी के काव्य में साम्प्रदायिक एकता

- डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र

आज साम्प्रदायिकता, मजहबी उन्माद, आतंकवाद आदि के कारण सम्पूर्ण मानवजाति के समक्ष एक गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया है। लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और देश की एकता खतरे में पड़ गई है। मध्यकाल की भाँति धर्म हमारी जिन्दगी में बराबर हस्तक्षेप कर रहा है। धर्म के गलत अर्थ के कारण तरह-तरह के दुराग्रहों, कट्टरताओं एंव संकीर्णताओं का बोलबाला है। सामाजिक-जीवन असुरक्षित एवं संशयग्रस्त हो गया है। दरअसल धर्म के मूल स्वरूप को न समझने के कारण ही देश एवं विदेश में जातीय एवं साम्प्रदायिक विद्वेष पनप रहा है, सद्भाव की भावना आहत हो रही है।

वास्तव में धर्म मनुष्य के अन्दर की एक ऐसी प्रेरणा, भावना, प्रवृत्ति एवं व्यवस्था है, जो मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को ऊँचा उठाता है। धर्म सृष्टि का प्राण तत्व है जो कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश देता है, दया, प्रेम एवं आपसी मेल-मिलाप को बढ़ाता है। मनुस्मृति में कहा गया है -

धृतिः क्षमा दमोस्तयं शौचमिन्द्रिय निग्रह।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्म लक्षणम्॥

जायसी ने भी धर्म-कर्म की महिमा का संकेत बोहित-खण्ड में किया है-

दस महं एक जाइ कोइ करम, धरम, तप नेम।
बोहित पार होइ जब, तबहि कुसल औ खेम॥

सामान्यतः आज जिसे धर्म समझा जा रहा है, वह धर्म नहीं सम्प्रदाय बन गया है। धर्म व्यक्ति, समाज और राज्य के दैनिक क्रिया-कलापों में एक नैतिक हस्तक्षेप है जोकि व्यक्ति और व्यवस्था को सन्तुलित एवं सुव्यवस्थित बनाता है, बशर्ते उसका सही परिपालन हो। सभी धर्म मानवीय मूल्यों को ऊँचाई की ओर ले जाते हैं, जबकि साम्प्रदियकता उसे दल-दल में धकेलती है। साम्प्रदायिक राजनीति के कारण ही देश को विभाजन की पीड़ा सहनी पड़ी, बर्बर हत्याओं का सिलसिला आज भी जारी है। अमेरिका और संसद भवन की घटनाएँ एक नए इतिहास का सर्जन कर रही हैं। देश विभाजन की पीड़ा एवं साम्प्रदायिकता को 'झूठा-सच', 'तमस', 'कठपुतली', 'तकसीम', 'वाह कैम्प',

'टुकड़े', 'कितने पाकिस्तान', 'नीलू नीलिमा', 'नीलोफर' आदि उपन्यासों में मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है।

भारत में इस्लाम धर्म के आगमन के साथ-साथ साम्प्रदायिकता ने जन्म लिया। मुस्लिम शासिका रजिया ने हिन्दू विरोधी नीतियों के कारण गयासुद्दीन बलबन को 'फिरकापरस्त' कहकर पुकारा था। गणेशशंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' में इस शब्द का हिन्दी अनुवाद 'साम्प्रदायिक' किया और तभी से इसका प्रयोग समाज और साहित्य में किया जा रहा है। हो सकता है कि इसके पूर्व भी इस शब्द का प्रचलन रहा हो। जो भी हो जब-जब हमारे देश में जाति, वर्ण, वर्ग एवं साम्प्रदायिक भेद-भाव से मानव जाति के सामने संकट आया है, तब-तब हमारे मनीषियों, चिंतकों, समाजसुधारकों, संतों और कवियों ने अपनी-अपनी वाणी एवं विचारों द्वारा त्रस्त मानव को संबल प्रदान किया है। इस दिशा में भक्तिकाल के कवियों का विशेष योगदान रहा है। कबीर तो साम्प्रदायिक सद्भाव हेतु आजीवन संघर्ष करते रहे। वासुदेव सिंह का मत है - "कबीर का धर्म सच्चा मानव धर्म है, जो मनुष्य को जोड़ता है, तोड़ता नहीं, जिसमें ऐसी सच्चाई है जो सभी धर्मों के मूल में हैं, किन्तु जो सभी धर्मों के वाह्याडम्बरों और पाषण्डों से रहित है। उन्होंने ऐसे धर्म का प्रचार किया, जिसका आधार विश्वास और व्यक्तिगत अनुभव है, जो सभी प्रकार के मताग्रहों से परे हैं, जो सभी प्रकार के साम्प्रदायिक विवादों और औपचारिक धार्मिक मान्यताओं से रहित हैं।"

कबीर के साथ-साथ अन्य कवियों के सारे आग्रह मनुष्य जीवन और जगत् को सुधारने और संवारने के रहे हैं। उनकी सारी सोच और चिंताओं के केन्द्र में मानव रहा। सभी ने अपने 'राम' और 'प्रेम' को जीवन की पूँजी माना। कर्म, सच्चरित्रता, नैतिकता, सादा जीवन और संवेदनशीलता ही उनके जीवन के संबल रहे। इनमें कोई ऐसा नहीं था जो कि पर दुख कातर न हो और लोक-जीवन की उपेक्षा करता हो। उनकी कविताएँ इस बात को प्रमाणित करती है कि महान कविता मानवीय विचारधारा एवं मूल्यों से पुष्ट होती है।

जायसी के काव्य में उक्त विचारधारा का सुन्दर परिपाक हुआ है। प्रेम ही जिसके जीवन की पूँजी रही, और इसी के बलबूते, वे आजीवन मानवतावादी विचारधारा की स्थापना हेतु संघर्ष करते रहे। विजयदेव नारायण साही ने सही लिखा है - "जायसी का प्रस्थान बिन्दु न ईश्वर है, न कोई नया अध्यात्म है। उनकी चिन्ता का मुख्य ध्येय मनुष्य है - मनुष्य, जैसा कि वह सामान्य जिन्दगी में उठता-बैठता है, सीखता है, प्रेम करता है गृहस्थी चलाता है, युद्ध में वीरता और कायरता दिखाता है, राज्य स्थापित करता है; छल-कपट, बेईमानी और कमीनापन करता है, सम्प्रदाय स्थापित करता है, बटोर के लिए नारे लगाता है।" यहीं पर कबीर की स्थिति भिन्न है। वे अपनी निष्पक्षता बनाए रखने के लिए हिन्दू और मुसलमानों से समान दूरी बनाए रखते हैं। जायसी एक मात्र

कवि हैं जिनके सामने हिन्दू-मुसलमान अलग-अलग नहीं हैं। वे घुल-मिल कर सामान्य मनुष्य हो गए हैं। जायसी मुस्लिम संस्कृति की अपेक्षा हिन्दू संस्कृति के कुशल चितेरे हैं। उनकी पद्मावती वेदों की ज्ञाता है। रामायण और महाभारत के राम और कृष्ण तथा अन्य देवी-देवताओं में शिव-पार्वती, लक्ष्मी, हनुमान आदि का उल्लेख 'पद्मावत' में जगह-जगह पर हुआ है। इसमें उत्तर भारत की सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति जीवन्त हो उठी है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है -

चतुर बेद मति सब ओहि पाहाँ। रिग जजु साम अथर्बन माहाँ॥
एक एक बोल अरथ चौगुना। इंद्र मोह बरम्हा सिर धुना॥
दिन औ राति जानु भए एका। राम आइ रावन गढ़ छेंका॥
तस किछु कहा न जाइ निरवेधा। अरजुन बान राहु गा बेधा॥
जैसे जरत लखा ग्रिहँ साहस कीन्हेउ भीवँ।
जरत खंभ तस काढ़हु कै पुरुखारथ जीवँ॥

पद्मावत में जगह-जगह पर हिन्दू के पौराणिक धार्मिक ग्रन्थों के कथा-प्रसंगों एवं पात्रों का उल्लेख किया गया है। शिवकुमार मिश्र का कहना सही है - "कबीर सरीखा तेजस्वी ईमानदार रहते हुए भी उन्होंने दूसरे धर्म मतों को आदर दिया और जिसे मनुष्यता का सामान्य हृदय कहते हैं, या जिसे मनुष्यत्व की सामान्य भूमि कहते हैं, उस जमीन पर, जिससे भी मिले, मनुष्य के नाते मिले, बिना किसी फर्क या भेदभाव के मिले। आगे उनका अभिमत है कि "कथा के हिन्दू मुसलमान चरित्रों को उन्होंने बिना किसी भेदभाव के पेश किया है। हिन्दुओं के लोक-विश्वासों, उनकी रीतियों तथा आचार-विचारों, उनकी धार्मिक-आध्यात्मिक आस्थाओं को उन्होंने विशद् रूप में सहानुभूतिपूर्वक और भरपूर सहायता के साथ चित्रित किया है।"

सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरिमद भुइँ कुसुंभि तन चोला॥
हिम हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झँकोरा॥
फाग करहि सब चांचरि जोरी। मोहिं जिय लाइ दीन्हि जसि होरी॥
जौं पै पियहि जरत अस पावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा॥

आधुनिक समीक्षकों में विजयदेवनारायण साही और रघुवंश ने जायसी को नयी दृष्टि से समझने का सफल प्रयास किया है। रघुवंश का कथन है - "कवि सम्पूर्ण जीवन को ग्रहण करता है, उसकी रचना में अच्छा-बुरा, गुण-दोष सभी कुछ अपनी विविधता के साथ प्रस्तुत होता है। इस सारे दृश्य विधान को रचना में आत्मसात् कर लेने पर ही वह विवेक दृष्टि व्यंजित होती है, जो मनुष्य को मनुष्य से मिलती है, और जिसे प्रेम की पीर कहा गया है।"

यह बात सही है कि आज का जीवन कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीराँ का जीवन नहीं है। अब हम पल-पल, परिवर्तित होने वाली विज्ञान की दुनियाँ में सांस ले रहे हैं। जहाँ यंत्रों के बीच रहते-रहते हमारी मानवीय संवेदनाएँ सूख रही हैं। जिसके कारण हम भीड़ में अकेले खड़े हैं। हृदयगति रुकने से मृत्यु की दर बढ़ रही है। मानवीय मूल्यों की गठरी बहुत संभालने के बाद भी छूटती जा रही है। 'अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि' का भयंकर स्वरूप सर्वत्र विद्यमान है। इस विषम एवं संकट-ग्रस्त परिस्थिति में हिंसा का उत्तर हिंसा नहीं बल्कि जायसी का भाववादी प्रेमदर्शन ही हो सकता है। अटपटी वाणी से कटुता और बढ़ती है। सह-अस्तित्व, सहबोध और विविधता में एकता ही तो हमारी राष्ट्रीय सामाजिक संस्कृति की पहचान रही है। जायसी ने अपने काव्य में इस संस्कृति को जीवन्त रूप प्रदान किया है। शिवसहाय पाठक ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा है - "सूफी प्रेमाख्यानों की यह विशेषता थी कि इनके द्वारा हमें प्रेम-तत्व के व्यापक रूप को समझ पाने में अधिक सहायता मिली और इनके कारण धर्म, सम्प्रदाय अथवा वर्गगत भेदभावों को दूरकर एक सर्वमान्य समाज की स्थापना के लिए प्रेरणा भी प्राप्त हुई।"

जायसी ने साम्प्रदायिक सद्भाव की बात मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं दर्शन के आधार पर की। प्रेम मानव जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है जो कि हमारे जीवन एवं समाज से खिसकता जा रहा है। आचारण की शुद्धता गायब हो रही है। जायसी ने आपसी प्रेम एवं सद्भाव पूर्ण जीवन को स्वगतुल्य माना।

मानुस पेम भएउ बैकुंठी। नाहिं त काह छार एक मूंठी॥
पेमहिं माहं विरह और रसा। मैन के घर मधु अंब्रित बसा॥
निसत धाइ जौं मरै तो काहा। सत जौं करै बैसेइ होइ लाहा॥
एक बार जौं मनु कै सेवा। सेवहि फल परसन होइ देवा॥

'अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः, उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरमैः में व्यक्त मानवीय मूल्यों की चर्चा जायसी ने 'सेवा मइं जाकर मन लागू। दिन-दिन बाढ़ै अधिक सोहागू और 'साहस जहं सिद्धि तहं होई' पंक्तियों में की है।

जायसी विनयशीलता, दानधर्म तथा शालीनता को मानव जीवन एवं साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए आवश्यक मानते थे। मिथ्याभिमान, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि को निरर्थक और निस्सार समझते थे।

लोभ पाप कै नदी अँकोरा। सत्रु न रहै हाथ जस बोदा।
जेहि की रिसि मरिए रस जीजै। सो रस तजि रिसि कबहु न कीजै॥

डॉ० दशन सेठी ने ठीक ही लिखा है - जायसी का जीवन दर्शन एक स्वस्थ तथा सकारात्मक-जीवन-दृष्टि है। जो व्यक्ति, वर्ग, वर्ण तथा काल की

सीमाओं से परे एक सार्वभौम मूल्य व्यवस्था है। इसका मूल संवेदनशील समन्वय भावना अथवा भारतीय समवेत संस्कृति की प्रशस्त पुण्य-परम्परा है।"

जायसी के मन में हिन्दू-मुस्लिम के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। यथा प्रसंग वे दोनों सम्प्रदायों की निन्दा और प्रशंसा करते हैं। 'गोरा-बादल युद्ध-खण्ड' में वे गोरा की प्रशंसा मुक्त कंठ से करते हैं -

सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुएं पार कोई घिसियावा॥
करै सिंघ हठि सौंही डीठी। जब लगि जिअै देह नहिं पीठी॥
रतनसेनि तुम्ह बांधा मसि गोरा के गात।
जब लगि रुधिर न धोवौं तब लगि होउं न रात॥

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मानना है - "जायसी की 'पदुमावति' का कथानक शुद्ध भारतीय पात्रों को लेकर भारतीय वातावरण में ही आगे बढ़ता है। इसके घटना-क्षेत्र अलौकिक पात्रों के क्रियाकलाप, नायक-नायिका के आमोद-प्रमोद एवं विरह-संताप आदि प्रायः सभी बातें भारतीय हैं।"

सूफी कवि जायसी ने हिन्दू घरानों में प्रचलित कथा को हिन्दू आस्था के साथ बिना किसी भेदभाव के प्रस्तुत किया है। मुसलमान होते हुए भी जायसी ने मुस्लिम पात्रों के साथ कोई पक्षपात नहीं किया है। आज तो जाति, भाषा, प्रान्त और सम्प्रदाय के कारण लोगों के बीच दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। राजनीति की सारी मोहरें जाति और सम्प्रदाय के आधार पर बिछाई जाती हैं। जायसी की दृष्टि में रत्नसेन और अलाउद्दीन का संघर्ष दो जातियों का संघर्ष नहीं बल्कि दो आदर्शों का संघर्ष है। डॉ० वासुदेव सिंह ने अपनी एक पुस्तक में पद्मावत की कथा में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के अपूर्व सामंजस्य की बात करते हुए उसके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व को रेखांकित किया है।

जायसी हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के पारखी कवि थे, जिनकी नजर से लोक और नगर जीवन के चित्र ओझल नहीं हुए हैं। जिसमें गाँव का ठेठ गवईंपन है तो नगर की भव्यता भी मौजूद है। इस्लाम एवं हिन्दू संस्कृतियों का वर्णन आपस में घुल-मिल गया है। पौराणिक ऐतिहासिक एवं धार्मिक सन्दर्भों का उल्लेख जगह-जगह हुआ है -

जस मारइ कहँ बाजा तुरू। सूरी देखि हंसा मंसूरू॥
चमके दसन भएउ उंजियारा। जो जहं तहाँ बीजु अस मारा॥

'भक्तिकाव्य का समाज दर्शन' पुस्तक में प्रेमशंकर ने लिखा है - उदार सूफी पंथ ने उन्हें वह व्यापक दृष्टि दी, जहाँ सारे भेद मिट जाते हैं - 'का पूँछहू अब जाति हमारी। राज छाड़ि कै भयउ भिखारी।' (रत्नसेन-सूली-खण्ड) जिस बहुलता से वे भारतीय देवत्व का स्मरण करते हैं, वह उनका उदार पंथ है। उन्होंने विशेष रूप से (पार्वती-महेश-खण्ड) की नियोजना की। जहाँ अवढर

दानी शंकर रत्नसेन पर कृपालु होते हैं- 'कहेन्हि न रोव, बहुत तै रोवा । अब ईसर भा दारिद खोवा ।' 'लक्ष्मी समुद्र-खण्ड' में लक्ष्मी पद्मावती को आशीषती है - "ना मरू बहिन, मिलिहि तोर पीऊ ।"

पर्व, धार्मिक विश्वास, व्रत, उपवास आदि का वर्णन जायसी की उदार-दृष्टि का परिचय देते हैं। जायसी का साम्प्रदायिक सद्भाव वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक है । संकीर्ण साम्प्रदायिक तथा निहित स्वार्थों से दुष्प्रेरित आतंक एवं हिंसा से सारा संसार संत्रस्त है । इस विषम परिस्थिति में जायसी के विचार निश्चित रूप से हमारे लिए प्रेरणा स्रोत हैं ।

जायसी ने दर्शन एवं भाषा के स्तर पर भी उदारतापूर्वक समन्वय किया है । इनकी दार्शनिक चेतना में वेदान्त के अद्वैतवाद, बौद्धों की करुणा, जैनों की अहिंसा, नाथों की नैतिकता और योगदर्शन का अद्भुत सामंजस्य हुआ है।

'अलख अरूप अबरन सो करता । वह सब सों सब ओहि सो बरता।।
परगट गुपुत सो सरब वियापी । धरमी चीन्ह-चीन्ह नहिं पापी ।।
ना ओहि पूत न पिता न माता । ना ओहि कुटुंब न कोई संग नाता ।।
जना न काहू न कोइ ओइँ जना । जहँ लगि सब ताकर सिरजना।।'

'सूफी साधना' सिद्धान्त मानव-भाव की प्रेम प्रधान साधना है । सूफी जगत के कण-कण और सम्पूर्ण प्रकृति में उसी परमशक्ति की सत्ता मानते हैं। ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है तो फिर भेदभाव की बात कहाँ से पैदा होती है ? क्योंकि हम सब उसी की संतान है । प्रत्येक जीव के साथ प्रेम का व्यवहार करके ही सूफी परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हैं । जायसी एवं अन्य सूफी साधकों के मन में दोनों धर्मों के प्रति सम्मान का भाव था । हजरत निजामुद्दीन औलिया ने फरमाया था - 'कुफ्रइस्लाम दर रहस पोया । वहदहू लाशरी कुलह गौयाँ' अर्थात् हिन्दू और मुसलमान सब लोग एक ही परमात्मा के पथ के पथिक हैं और सब एक ही ईश्वर की ओर जा रहे हैं ।

जायसी की भाँति अन्य संतों ने भी साम्प्रदायिक एकता पर बल देते हुए 'जाति पांति पूछे ना कोई', 'हमारे कैसो लोहू तुम्हारे कैसो दूध; तुम कैसे ब्राह्मण हम कैसे सूद्र', हिन्दू की हद छाँड़िकै तजी तुरक की राह; सुन्दर सहजै चीन्हिया, एकै राम अल्लाह की बात क्रमशः नामदेव, कबीर और रज्जब ने की है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने भाषाओं की विभिन्नता के कारण उत्पन्न हुई समस्याओं का समाधान सरलतापूर्वक किया । वे प्रत्येक भाषा को भाव-अभिव्यक्ति का माध्यम मानते हैं -

जावण पक्षी जगति में बैठे सब अमराउ ।
आपन-आपन भासा लेई दई कर नाउ ।।

इनकी दृष्टि में प्रेम सिक्त भाषा ही श्रेष्ठ हैं, जो मानव को आपस में एक दूसरे से जोड़ सके।

'तुरकी अरबी हिंदुई भाषा जैती आहिं।
जेहि महं मारग प्रेम कर सबै सराहैं ताहिं॥'

भाषा मानव जाति की सम्पत्ति है, जिसका सम्बन्ध किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय और प्रदेश से नहीं होता। यह दो दिलों को जोड़ने का कार्य करती है। जायसी ने अपने विचारों एवं काव्य के द्वारा भाषिक सामंजस्य को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया।

वस्तुतः आज की भौतिक, तकनीकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी की दुनिया में मध्यकालीन मानवीय मूल्यों से प्रेरित आध्यात्मिक भावना के तन्तु ढीले पड़ते जा रहे हैं। फलस्वरूप नाना प्रकार के वैयक्तिक एवं सामाजिक संकटों का उदय हो रहा है। भौतिकता और आध्यात्मिकता का सन्तुलन बिगड़ गया है। वैसे भारतीय जनता चाहे जिस धर्म को मानने वाली क्यों न हो, उसका मिजाज देखकर हम कह सकते हैं कि वह धार्मिक आस्था वाली है, जो कि धर्म, कर्मकाण्ड और रीति-रिवाजों पर आज भी विश्वास करती है। इसी के तहत कबीर और तुलसी के विचारों को मंडल-कमंडल की राजनीति से जोड़ दिया गया। दलित एवं नारी विमर्श की चर्चा में मध्यकालीन कवियों के विचारों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जा रहा है। सूर और जायसी का रुहानी चिन्तन आज मांसल प्रेम में परिणत हो गया है। सूर की गोपिकाएँ मीडिया एवं विभिन्न उत्सवों पर श्रृंगारिक भावनाओं से जुड़ गई हैं। सूर काव्य की आधात्मिकता को ध्यान में रखे बिना लोग आधुनिक युवतियों की स्वच्छन्दता को गोपियों से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। तुलसी की पारिवारिक एवं सामाजिक मान्यताओं की चिन्ता उन्हें नहीं हैं। वैसे आधुनिक रत्नसेन भी नागमती को छोड़कर पद्मावती के पीछे भाग रहे हैं। महानगरों में तो निजी सेविकाओं का प्रचलन भी चल पड़ा है।

कबीर की निष्पक्षता, जायसी और सूर की लोक-संस्कृति तथा तुलसी की मर्यादा हमारे जीवन से विलुप्त होती जा रही है। मजहबी उन्माद की आंधी में जायसी के मानवतावादी साम्प्रदायिक सद्भाव के विचारों को हाशिए पर ठेल दिया गया है। श्री भगवान सिंह का अभिमत है - सचमुच देखा जाए तो समकालीन हिन्दी आलोचना में प्रगतिशीलता एवं फिर दलित चेतना का ऐसा कोलाहल मचा हुआ है कि जायसी जैसे कवि पर दृष्टिपात करना हमारे समीक्षकों को वक्त जाया करने जैसा लगता है।"

कहना होगा कि वर्तमान परिस्थिति में साम्प्रदायिक एकता के लिए जायसी के विचारों की प्रासंगिकता बढ़ गई है। जीवन की सार्थकता का सार मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम और सद्भाव में ही निहित है। जायसी केवल प्रेम

पियारा के उपासक थे, जो कि आपस के लोक प्रेम के बाद ही परलोक की बात करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विभिन्न जातियों के मातृत्व हृदयों में उठने वाली प्रेम तरंगों, एवं मानवीय संवेदनाओं की एक रूपता पर बल दिया है। लोकमंगल की कामना में वे हृदयों के जुड़ने पर विश्वास करते हैं। प्रेम तो जायसी के जीवन एवं काव्य का प्राणतत्व है और साम्प्रदायिक एकता तो प्रेम के द्वारा ही कायम हो सकती है -

तीन लोक चौदह खंड। सबै परै मोहि सूझि।
पेम छाड़ि किछु औरु न। लोना जौं देखौं मन बूझि॥

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जायसी ग्रन्थावली - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. पद्मावत - वासुदेवशरण अग्रवाल
3. जायसी - विजयदेव नारायण साही
4. भक्तिकाव्य और लोकजीवन - शिवकुमार मिश्र
5. जायसी : एक नई दृष्टि - रघुवंश
6. हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन - शिवसहाय पाठक
7. जायसी - दर्शन शेठी
8. सूफी-काव्य संग्रह - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
9. भक्ति काव्य का समाजदर्शन - प्रेमशंकर
10. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - वासुदेव सिंह
11. कबीर, साहित्य, साधना और पंथ - वासुदेव सिंह
12. आलोचना- सं० परमानंद श्रीवास्तव - अप्रैल-जून 2000
13. वसुधा- सं० कमलाप्रसाद - अंक 39 (अप्रैल-जून 97)
14. कसौटी - सं० नंदकिशोर नवल - अंक 8
15. हिन्दी अनुशीलन - वर्ष 34, अंक 1, 1992
16. समीक्षा - सं० गोपाल राय - अंक 1 अप्रैल-जून, 2001